स्वदेशी चिकित्सा

बीमारियों को ठीक करने के आयुर्वेदिक नुस्खे

महान आयुर्वेद विशेषज्ञ :
श्री वागभट्ट द्वारा रचित अष्टांगहृदयम् पर आधारित

भाग - 3

संकलन एवं संपादन
राजीव दीक्षित
पुनर्लेखन : प्रदीप दीक्षित

भाई राजीव दीक्षित - पुस्तक संग्रह ⑥

राजीव भाई के व्याख्यानों पर आधारित साहित्य

शीर्षक	मूल्य
1. स्वदेशी चिकित्सा, भाग - 1	रू. - 50/-
2. स्वदेशी चिकित्सा, भाग - 2	रू. - 50/-
3. स्वदेशी चिकित्सा, भाग - 3	रू. - 50/-
4. बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा भारत की लूट	रू. - 50 /-
5. सरकारों ने दिया है देश को लूटने का लाइसेंस	रू. - 50/-
6. बहुराष्ट्रीय कंपनियों का असली चेहरा	रू. - 50/-
7. मांसाहार से हानियां	रू. - 60/-
8. WTO : भारत को गुलाम बनाने का संविधान	रू. - 50/-
9. गाय और पंचगव्य द्वारा घरेलू इलाज	रू. - 50/-
10. गाय और स्वदेशी कृषि	रू. - 50/-
शीघ्र प्रकाशित	
11. स्वदेशी भारत को पुनः सोने की चिड़िया बनाने का मंत्र	रू. - 50/-
12. भारत की पुनर्योजना : स्वदेशी के आधार पर	रू. - 50/-
13. भारत स्वाभिमान शंखनाद पर आधारित 10 किताबों का सेट	रू. - 50/-
14. स्वदेशी भारत की रूपरेखा	रू. - 50/-
15. भारत और पश्चिमी सभ्यता का अन्तर	रू. - 50/-
16. स्वदेशी चिकित्सा, भाग - 4	रू. - 50/-

स्वदेशी चिकित्सा किताबों के सेट में इनके अलावा 3 अन्य किताबें भी हैं।

राजीव भाई द्वारा दिये गये व्याख्यान (*MP3*)

हमारा संकल्प:

5 करोड़ घरों में राजीव भाई की आवाज पहुँचाना-साथी हाथ बढ़ाना

स्वदेशी चिकित्सा

(महान आयुर्वेद विशेषज्ञ : श्री वागभट्ट द्वारा रचित अष्टांगहृदयम् पर आधारित)

भाग–3

संकलन एवं संपादन

राजीव दीक्षित

स्वदेशी प्रकाशन,
सेवाग्राम, वर्धा

स्वदेशी चिकित्सा

लेखक : **राजीव दीक्षित**

प्रकाशक : **स्वदेशी प्रकाशन**

सर्वाधिकार प्रकाशक के पास सुरक्षित

प्रथम संस्करण : 2012 (3000 प्रतियाँ)

स्वदेशी प्रकाशन, सेवाग्राम, वर्धा द्वारा
स्वदेशी भारत पीठ्म (ट्रस्ट) के लिए प्रकाशित

स्वदेशी भारत पीठ्म (ट्रस्ट)
सेवाग्राम रोड, हुत्तामा स्मारक के पास
सेवाग्राम, वर्धा – 442 102
फोन नं.– 07152–284014
मोबाईल : 9822520113, 9422140731

सहयोग राशि : 50 रुपये

विषय सूची

प्रस्तावना 4

प्रथम अध्याय – अर्श रोग चिकित्सा 5–31
(मूळव्याध, बावासीर, भंगदर आदि रोग)

द्वितीय अध्याय – अतिसार रोग चिकित्सा 32–51
(दस्त, पेचिश आदि रोग)

तृतीय अध्याय – ग्रहणी रोग चिकित्सा 52–66
(आमाशय एवं पेट से जुड़े रोग)

चुर्तथ अध्याय – मूत्र रोग चिकित्सा 67–75

पंचम अध्याय – प्रमेह रोग चिकित्सा 76–82
(मधुमेह, डायबिटीज आदि रोग)

शष्ठम् अध्याय – विद्रधि रोग चिकित्सा 83–90
(पका हुआ फोड़ा,)

सप्तम् अध्याय– गुल्म रोग रोगों की चिकित्सा 91–111
(पेट की गांठ के रोग)

अष्टम् अध्याय – उदर रोग चिकित्सा 112–120
(पेट के सामान्य रोग)

प्रस्तावना

भारत में जिस शास्त्र की मदद से निरोगी होकर जीवन व्यतीत करने का ज्ञान मिलता है उसे आयुर्वेद कहते है। आयुर्वेद में निरोगी होकर जीवन व्यतीत करना ही धर्म माना गया है। रोगी होकर लम्बी आयु को प्राप्त करना या निरोगी होकर कम आयु को प्राप्त करना दोनों ही आयुर्वेद में मान्य नहीं है। इसलिये जो भी नागरिक अपने जीवन को निरोगी रखकर लम्बी आयु चाहते हैं, उन सभी को आयुर्वेद के ज्ञान को अपने जीवन में धारण करना चाहिए। निरोगी जीवन के बिना किसी को भी धन की प्राप्ति, सुख की प्राप्ति, धर्म की प्रप्ति नहीं हो सकती है। रोगी व्यक्ति किसी भी तरह का सुख प्राप्त नहीं कर सकता है। रोगी व्यक्ति कोई भी कार्य करके ठीक से धन भी नहीं कमा सकता है। हमारा स्वस्थ शरीर ही सभी तरह के ज्ञान को प्राप्त कर सकता है। शरीर के नष्ट हो जाने पर संसार की सभी वस्तुयें बेकार हैं। यदि स्वस्थ शरीर है तो सभी प्रकार के सुखों का आनन्द लिया जा सकता है। दुनिया में आयुर्वेद ही एक मात्र शास्त्र या चिकित्सा पद्धति है जो मनुष्य को निरोगी जीवन देने की गारंटी देता है। बाकी अन्य सभी चिकित्सा पद्धतियों में "पहले बीमार बनें फिर आपका इलाज किया जायेगा", लेकिन गारंटी कुछ भी नहीं है। आयुर्वेद एक शाश्वत एवं सातत्य वाला शास्त्र है। इसकी उत्पत्ति सृष्टि के रचियता श्री ब्रह्माजी के द्वारा हुई ऐसा कहा जाता है। ब्रह्माजी ने आयुर्वेद का ज्ञान दक्ष प्रजापति को दिया। श्री दक्ष प्रजापति ने यह ज्ञान अश्विनी कुमारों को दिया। उसके बाद यह ज्ञान देवताओं के राजा इन्द्र के पास पहुँचा। देवराजा इन्द्र ने इस ज्ञान को ऋषियों–मुनियों जैसे आत्रेय, पुतर्वसु आदि को दिया। उसके बाद यह ज्ञान पृथ्वी पर फैलता चला गया। इस ज्ञान को पृथ्वी पर फैलाने वाले अनेक महान ऋषि एवं वैद्य हुये हैं। जो समय–समय पर आते रहे और लोगों को यह ज्ञान देते रहे हैं। जैसे चरक ऋषि, सुश्रुत, आत्रेय ऋषि, पुनर्वसु ऋषि, काश्यप ऋषि आदि–आदि। इसी श्रृंखला में एक महान ऋषि हुये वाग्भट्ट ऋषि जिन्होंने आयुर्वेद के ज्ञान को लोगों तक पहुँचाने के लिये एक शास्त्र की रचना की, जिसका नाम "अष्टांग हृदयम्"।

इस अष्टांग हृदयम् शास्त्र में लगभग 7000 श्लोक दिये गये है। ये श्लोक मनुष्य जीवन को पूरी तरह निरोगी बनाने के लिये हैं। प्रस्तुत पुस्तक में कुछ श्लोक, हिन्दी अनुवाद के साथ दिये जा रहे हैं। इन श्लोकों का सामान्य जीवन में अधिक से अधिक उपयोग हो सके इसके लिये विश्लेषण भी सरल भाषा में देने की कोशिश की गयी है।

प्रथम अध्याय

अथातोऽर्शसां चिकित्सितं व्याख्यास्यामः।
इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः।।

अर्थ : मदाव्यय चिकित्सा व्याख्यान के बाद अर्श चिकित्सा का व्याख्यान करेंगे ऐसा आत्रेयांदि महर्षियों ने कहा था।

अर्श रोग में क्षार, दाह तथा भास्त्र कर्म का उपक्रम–

काले साधरणे व्यभ्रे नातिदुर्बलमर्शसम्।
विशु0कोष्ठं लघ्वल्पमनुलोमनमाशितम्।।
शुचिं कृतस्वस्त्ययनं मुक्तविण्मूत्रमव्यथम्।
भायने फलके वाऽन्य–नरोत्सगे· व्यपाश्रितम्।।
पूर्वेण कायेनोतानं प्रत्यादित्यगुदं समम्।
समुन्नतकटीदेशमथ यन्त्रणवाससा।।
सक्थ्नोः शिरोधरायां च परिक्षिप्तमृजुस्थितम्।
आलम्बितं परिचरैः सर्पिशाऽभ्यक्तपायवे।।
ततोऽस्मै सर्पिषाऽभ्यक्तं निदध्यादृजु यन्त्रकम्।
भानैरनुसुखं पायौ ततो दृष्ट्वा प्रवाहणात्।।
यन्त्रे प्रविष्टं दुर्नाम प्लोतगुण्ठितयाऽनु च।
भालाकयोत्पीडय भिशग् यथोक्तविधिना दहेत्।।
क्षारेणैवार्द्रमितरत्क्षासेण ज्वलनेन वा।
महद्वा बलिनश्छित्त्वा वीतयन्त्रमथातुरम्।।
स्वभ्युक्तपायुजघनमवगाहे निधापयेत्।
निर्वातमन्दिरस्थस्य ततोऽस्याचारमादिशेत्।।
एकैकमिति सप्ताहात्सप्ताहात्समुपाचरेत्।

अर्थ : साधारण समय (श्रावण, कार्तिक, चैत्र माह या शरद वसन्त ऋतु) में आकाश में बादल न रहने पर यदि रोगी अधिक दुर्बल न हो तो वमन–विरेचन द्वारा कोष्ठ शुद्ध कर तथा हल्का थोड़ा तथा अनुलोमक (मल प्रवर्तक) भोजन खिलाकर, स्नान आदि से पवित्र, स्वस्ति वाचन आदि कराकर, मल–मूत्र त्याग से निवृत्त व्यथा रहित, अर्श के रोगी को शयन फलक (शयन की चौकी) पर या किसी मनुष्य की गोंदी में बैठाकर शरीर का उपरि भाग उत्तान तथा सूर्य के समाने गुदा को स्थिर कर, यन्त्र या वस्त्र से कटिप्रदेश को ऊँचा कर, दोनों

टाँगों को कन्धे के ऊपर रखकर, सीधा बैठे हुए रोगी को परिचरो द्वारा पकड़े रहने पर घृत से गुदा स्निग्ध कर तथा घृत के द्वारा सीधा यन्त्र को चिकना बनाकर धीरे–धीरे सुखपूर्वक गुदा में प्रवेश करे। इसके बाद प्रवाहण करने पर मस्सा को देखकर यन्त्र में प्रविष्ट मस्सा को रूई से लपेटी हुई शलाका से उठा कर यथोक्त विधि से गीले मस्सा (रक्तज तथा कफज) को, क्षार से तथा इतरत् (वातज) मस्सा को क्षार तथा अग्नि से दग्ध करे। यदि मस्से बड़े हो और रोगी बलवान् हो तो मस्से को काटकर दग्ध करे। यन्त्र को निकालने के बादरोगी के गुदा तथा जघन प्रदेश में मालिश करने के बाद हवा रहित कमरे में स्थित गरम जल के टब में बैठाकर स्वेदन करे। इसके बाद शल्य विधि के नियमानुसार रखे। इस प्रकार एक–एक मस्से को सात–सात दिन बाद दग्ध करे या छेदन करे।

अर्श रोग में क्षारादि कर्म का क्रम–
प्राग्दक्षिणं ततो वाममर्शः पृष्ठाग्रजं ततः।।
बह्वर्शसः सुदग्धस्य स्याद्वायोरनुलोमता।
रूचिरन्त्रेऽग्निपटुता स्वास्थ्यं वर्णबलोदयः।।

अर्थ : यदि मस्से अधिक हो तो पूर्वोक्त विधि के अनुसार पहले दक्षिण भाग के मासीकुर (मस्सा पर) बाद में वाम भाग के मासांकुर (मस्सा) पर पुनः पृष्ठ भाग के मस्से पर तदनन्तर अग्र भाग के मस्से पर दग्ध कर्म या छेदन करे। अर्श के मासांकुरों को अच्छी तरह दग्ध कर देने पर वायु का अनुलोमन हो जाता है और भोजन करने में रूचि, जाठराग्नि प्रदीप्त, स्वस्थता तथा बल एवं वर्ण की वृद्धि होती है।

अर्श के उपद्रवों की चिकित्सा–
बस्तिशूले त्वधो नाभेर्लेपयेच्छ्लक्ष्णकलिकतैः।
वर्षाभू–कुष्ठ–सुरभि–मिशि–लोहाऽमराह्वयैः।।
शकृन्मूत्रप्रतीघाते परिषेकावगाहयोः।
वरणाऽलम्बुशैरण्ड–गोकण्टकपुनर्नवैः।।
सुषवीसुरभीभ्यां च क्वाथमुष्णं प्रयोजयेत्।
सस्नेहमथवा क्षीरं तैलं वा वातनाशनम्।।
युञ्जीतान्नं भाकृद्भेदि स्नेहान् वातघ्नदीपनान्।

अर्थ : अर्श के रोगी के वस्ति प्रदेश मं शूल होने पर नाभि के नीचे रक्त पुनर्नवा, कूट, तुलसी, सोआ, अगर, देवदारू समभाग इन सबों के महीन कल्क से लेप करे। यदि मल तथा मूत्र की रूकावट हो गई हो तो वरूण के छाल, गोरक्षमुण्डी, एरण्ड की जड़ गोखरू, गदहपूरना, करैला तथा तुलसी के

क्वाथ को परिसेचन तथा अवगाहन में प्रयोग करें। अथवा स्नेह युक्त दूध या वातनाशक (महानारायन, विषगर्भ आदि) तैल का प्रयोग करे और मलभेदक आहार तथा वातनाशक तथा जाठराग्नि दीपक स्नेह का प्रयोग करे।

दाहादि कर्म के अयोग्य अर्श की चिकित्सा–

अथाऽप्रयोज्यदाहस्य निर्गतान् कफवातजान्।।
संस्तम्भकण्डुरूक्शोफानभ्यज्य गुदकीलकान्।
बिल्वमूलाग्निकक्षारकुष्ठैः सिद्धेन सेचयेत्।।
तैलेनाऽहिविडालोष्ट्र–वराहवसयाऽथवा।
स्वेदयेनु पिण्डेन द्रवस्वेदेन वा पुनः।।
सक्तूनां पिण्डिकामिर्वा स्निग्धानां तैलसर्पिषा।
रास्नाया हपुषाया वा पिण्डैर्वा काण्र्यगन्धिकैः।।

अर्थ : क्षार, शस्त्र तथा दाह कर्म के अयोगय अर्श के रोगी के निकले हुए स्तब्धता, कण्डू, वेदना तथा शोथ वाले अर्श के गुदांकुरों को बेल की जड़, चित्रक, यवक्षार तथा कूट समभाग इन द्रव्यों के कल्क तथा क्वाथ के साथ विधिवत् सिद्ध तैल से अभ्यजन कर सेचन करे। अथवा साँप, विलाव, ऊँट या सुअर की वसा से स्वेदन करे। इसके बाद पिण्ड स्वेद या द्रव स्वेद से स्वेदन करे। अथवा तैल घृत से स्निग्ध सत्तू के पिण्ड से या रास्ना के पिण्ड या हाउवेर के पिण्ड से या सहिजन की छाल के कल्कपिण्ड से स्वेदन करे।

अर्श में धूपन योग–

अर्कमूलं भामीपत्रं नृकेशाः सर्पकञ्चुकम्।
माजरिचर्म सर्पिश्च धूपनं हितमर्शसाम्।।
तथाऽश्वगन्धा सुरसा बृहती पिप्पली घृतम्।

अर्थ : अर्श के रोगियों के अर्शागंकुरों में मदार की जड़, शमीपत्र, मनुष्य के माथे का बाल, सांप की केचुल, बिलाव का चर्म तथा घृत इन सबों का धूप देना हितकर होता है। अथवा असगन्ध, तुलसी, वनभण्टा, पीपर तथा घृत का धूप अर्श में हितकर है।

अर्श में अर्शशातन वर्ति–

धान्याम्लपिश्टैर्जीमूतबीजैस्तज्जालकं मृदु।।
लेपितं छायया शुष्कं वर्तिर्गुदजशातनी।
सजालमूलजीमूतलेहे वा क्षारसंयुते।।
गुज्जासूरणकूष्माण्डबीजैर्वर्तिसतथागुणा।

अर्थ : तितलौकी के बीज तथा मुलायम जाला को काज्जी के साथ पीसकर

जीमूतक के बहिर्भाग में लेप कर तथा छाया में सुखकर वर्ति बनावे और गुदा में लगावे। यह अर्श को गिराता है। अथवा तितलौकी की जाला तथा मूल को पीसकर उसके लेहवत् कल्क में यवक्षार, रती, सूरन, तथा सफेद कोहड़ा काली का चूर्ण मिलाकर बनाई हुई वर्ति अर्श के गुदांकुरों को गिराती है।

अर्श के अंकुरो पर विविध लेप–

स्नुक्क्षीरार्द्रनिशालेपस्तथा गोमूत्रकल्कितैः।।
कृकवाकुशकृत्कृष्णानिशागुञ्जाफलैस्तथा।
स्नुक्क्षीरपिष्टैः शङ्ग्रन्थाहलिनीवारणास्थिभिः।।
कुलीरशृङीविजयाकुष्ठारूष्करतुत्थकैः।
शिग्रुमूलकजैर्बीजैः पत्रैरश्वघ्ननिम्बजैः।।
पीलुमूलेन बिल्वेन हिङ्गुना च समन्वितैः।
कुष्ठं शिरीषबीजानि पिप्पल्यः सैन्धवं गुडः।।
अर्कक्षीरं सुधाक्षीरं त्रिफला च प्रलेपनम्।
आर्क पयः स्नुहीकाण्डं कटुकालाबुपल्लवाः।।
करञ्जो बस्तमूत्रं च लेपनं रेष्ठमर्शसाम्।
आनुविसनिकैर्लेपः पिप्पल्याद्यैश्च पूजितः।।

अर्थ : अर्श के अंकुरों पर सेंहुड़ के दूध के साथ पीसकर हल्दी को लेप करे। मुर्गा का पुरीष, पीपर, हल्दी तथा गुंज्जा फल को गोमूत्र के साथ पीसकर उसके कल्क से लेप करे। वच, कलिहारी तथा हाथी की हड्डी को सेंहुड़ के दूध के साथ पीसकर लेप करें। काकड़ा, सिंधी, भांग, कूट, भिलावा तथा तूतिया इन सबों को सेहुड़ के दूध के साथ पीसकर लेप करे। सहिजन तथा मूली के बीज, कनेर तथा नीम के पत्त, पीलु वृक्ष की जड़, बेल की गूदी तथा हींग इन सबों को गोमूत्र के साथ पीसकर लेप लगाये। कूट, सिरिष का बीज, पीपर, सेन्धा नमक तथा गुड़ एवं त्रिफला के चूर्ण को मदार का दूध तथा सेंहुड़ के दूध में लेप बनाकर लगाये। मदार का दूध, सेंहुड़ की तना और कड़वी लौकी का पत्ता तथा करंज्ज इन सबों को बकरी के दूध के साथ पीसकर लेप करे। ये अर्श रोग में हितकर हैं। अथवा पीपर तथा मदन फल आदि अनुवासनिक द्रव्यों का लेप अर्श रोग में हितकर है।

अर्श के ऊपर अभ्यगं–

एभिरेवौषधैः कुर्यात्तैलान्यभ्यञ्जनानि च।

अर्थ : पूर्वोक्त लेपन की औषधियों के कल्क तथा क्वाथ से विधिवत् सिद्ध तैलों का अर्श के ऊपर अभ्यञ्जन करे।

अर्श रोग में धूपन अभ्यञ्जनादि का फल–

धूपनालेपनाभ्यगंः प्रस्रवन्ति गुदाङ्कुराः।।
सञ्चितं दुष्टरूधिरं ततः सम्पद्यते सुखी।

अर्थ : गुदांकुर (अर्श के मस्से) पूर्वोक्त धूपन, आलेपन तथा अभ्यगं से संच्चित दूषित रक्त को स्राव करा देते हैं। इस के बाद अर्श का रोगी सुखी हो जाता है।

अर्श रोग में जलौका आदि से रक्त निकालने की अवस्था–
अवर्तमानमुच्छूनकठिनेभ्यो हरेदसृक्।।
अर्शोभ्यो जलजाशस्त्रसूचीकूचैः पुनः पुनः।

अर्थ : शोय युक्त तथा कठिन अर्श के मासांकुर से रक्त के धूपनादि द्वारा न निकलने पर जोंक, शस्त्र, सूची तथा कूर्च से बार–बार रक्त निकाले।

रक्त मोक्षण में हेतु–
शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्न व्याधिरूपशाम्यति।।
रक्ते दुष्टे भिषक् तस्माद्रक्तमेवावसेचयेत्।

अर्थ : रक्त के दूषित होन पर अर्श रोग शीत, उष्ण, स्निग्ध तथा रूक्ष आदि उपचार से नहीं शान्त होता है अतः रक्त का ही निर्हण करे।

विश्लेशण : अर्श दोषों द्वारा त्वचा मांस तथा मेदा दूषित कर गुदा आदि स्थानों में मांसाकुर उत्पन्न होते हैं। इसमें रक्त का दूषित होना नहीं पाया जाता है। अतः ऊपर बताये गये चिकित्सा से अंकुर नष्ट हो जाता हैं। यदि इससे दूषित रक्त का शमन हो जाय तो इन चिकित्साओं से अच्छा नहीं होता तब यह समझना चाहिए कि रक्त भी दूषित हो गया है। अत रक्त निकालने की विभिन्न विधियों का प्रयोग करे।

अर्श रोग में तक्र का प्रयोग–
यो जातो गोरसः क्षपीराद्वह्निचूर्णावचूर्णितात्।।
पिबंस्तमेव तेनैव भुज्जानो गुदजान् जयेत्।
कोविदारस्य मूलानां मथितेन रजः पिबेत्।।
अश्नन्नू जीर्णे च पथ्यानि मुच्यते हतनाममिः।

अर्थ : चित्रक चूर्ण मिश्रित दूध से जो गोरस (मट्ठा) निकलता है, इसको पीने तथा उसी के साथ भोजन करने से अर्श रोग को जीत लेता है। अथवा को–विदार (कचनार) की जड़ का चूर्ण मट्ठा के साथ पान करे और इसके पच जाने पर पथ्य आहार सेवन करने से रोगी अर्श रोग से मुक्त हो जाता है।

अर्श रोग में तक्र (मट्ठा) का विविध प्रयोग–
गुदश्वयथुशूलार्तो मन्दाग्निर्गौल्मिकान् पिबन्।।

books.ringaal.com
Visit us for more books